मिट्टी सचमुच गढ़ती है कुम्हार को

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

संत कबीर का एक दोहा हैः माटी कहे कुम्हार से तू का रौंदे मोहे, एक दिन ऐसा आएगा मैं रौंदूंगी तोहे। कबीर इसी बात को भूतकाल में भी कहते तो गलत न होता। कुम्हार के दुनिया में आने से बहुत-बहुत पहले मिट्टी का अस्तित्व था। यदि मिट्टी का अर्थ पृथ्वी की बदलती जलवायु और परिस्थितियों के रूप में लें, तो इसी ने कुम्हार तो क्या, हम सबको को गढ़ा है।

मानव विकास पर जलवायु परिवर्तन के असर को समझने के इसी विषय को लेकर यू.एस. में अकादमियों के एक समूह ने एक दीर्घावधि शोध परियोजना का प्रस्ताव रखा है। उनका यह प्रस्ताव आप www.nao.edu/catalog/12825.html पर देख सकते हैं। इस परियोजना में दो प्रमुख चीज़ों पर ध्यान केंद्रित किया जाएगा। पहली बात होगी कि जलवायु परिवर्तन और जलवायु में विविधता ने मानव विकास और मानव फैलाव को किस तरह प्रभावित किया है। अब यह माना जाता है कि वनस्पतियों द्वारा प्रकाश संश्लेषण के चलते अरबों वर्षों में पृथ्वी के वायुमंडल में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती गई थी और करीब 50 करोड़ वर्ष पूर्व इसने वायुमंडल, पर्यावरण, इकॉलॉजी और भूमि की बनावट पर ज़बर्दस्त असर डाला था जिसके चलते जीवों के रूपों में अचानक विस्फोटक वृद्धि हुई थी।

इसके समांतर, करीब 6.5 करोड़ वर्ष पूर्व एक विशाल उल्का पृथ्वी से टकराई थी और इस टक्कर की वजह से न सिर्फ डायनासौर लुप्त हो गए बल्कि कई अन्य प्रजातियों का नामो निशान भी मिट गया था। इस टक्कर में पहले तो बहुत गर्मी पैदा हुई थी मगर धूल का ऐसा गुबार छाया कि सूरज की धूप दशकों तक धरती पर नहीं पहुंची और भयानक ठंडक पैदा हुई।

सारे जलवायु परिवर्तन इतने नाटकीय नहीं होते। मगर जब भी जलवायु में कोई बड़ा बदलाव होता है, तो वह इकॉलॉजी को बदलता है और इसका असर सजीवों पर पड़ता है। कुछ जीव इससे निपटने में सफल होते हैं और जी जाते हैं जबकि अन्य जीव इस संघर्ष में खेत रहते हैं। इसके फलस्वरूप जिनेटिक चयन होता है और सर्वोत्तम बचे रहते हैं।

शोधकर्ता दुनिया भर से अधिक-से-अधिक जीवाश्म और जलवायु सम्बंधी आंकड़े एकत्रित करने के इच्छुक हैं। खास तौर से पिछले 80 लाख साल के आंकड़ों में विशेष रुचि है क्योंकि प्रायमेट्स का विकास इसी अवधि में हुआ है। इसके अलावा उन स्थलों की जलवायु सम्बंधी सटीक जानकारी की भी ज़रूरत होगी जहां ये जीव रहते थे, प्रजनन करते थे। ये आंकड़े झीलों और समुद्रों के पेंदों में गहरे सुराख करके प्राप्त किए जाएंगे। इन सुराखों से प्राप्त मिट्टी का अध्ययन व विश्लेषण किया जाएगा, ठीक उसी तरह जैसे वृक्षों की वार्षिक वलयों से उस समय की जलवायु की जानकारी प्राप्त की जाती है। मगर इसके लिए हमें विश्लेषण के ऐसे औज़ार चाहिए जिनकी मदद से अतीत की पर्यावरणीय परिस्थितियों को पुनर्निर्मित किया जा सके।

यह लगभग वैसा ही होगा जैसे जीव वैज्ञानिकों को मानव जीनोम के अध्ययन के संदर्भ में उपयुक्त तकनीकों के विकास की प्रतीक्षा करनी पड़ी थी। ये तकनीकें थीं रोबोटिक डीएनए सीक्वेंसिंग मशीन और इससे प्राप्त आंकड़ों को व्यवस्थित करके समझने के लिए जटिल कंप्यूटर एल्गोरिद्म। ज़ाहिर है, 80 लाख साल पहले, 20 लाख साल पहले (जब पृथ्वी पर मानव का प्रादुर्भाव हुआ था), और 2 लाख साल पहले (जब इन्सान अफ्रीका से बाकी दुनिया में फैलने लगे) की जलवायु व पर्यावरण को जानने के लिए सर्वथा नए तरीकों की ज़रूरत होगी। न सिर्फ

नए तरीके ज़रूरी होंगे बल्कि अतिरिक्त वित्त और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की भी दरकार होगी। मानव जीनोम परियोजना में भी ये चीज़ें निर्णायक रही थीं।

परियोजना का दूसरा विषय यह सवाल है: वे कौन-सी जैविक अथवा भौतिक प्रक्रियाएं रही हैं जिनके ज़रिए पर्यावरण में अतीत में हुए परिवर्तनों ने वनमानुषों और मनुष्य में वैकासिक व व्यवहारगत परिवर्तन पैदा किए। इस मामले में ज़्यादा क्षेत्र-आधारित प्रयासों की ज़रूरत होगी। अफ्रीका, पश्चिम एशिया व यूरेशिया में किस तरह के जलवायु पैटर्न रहे थे? और इन पैटर्न्स का सम्बंध हम उस समय के जीवाश्मों के आधार पर उपलब्ध पुरातात्विक और डीएनए आंकड़ों से किस तरह जोड़ें?

यह काम कैसे किया जाए? इसके लिए समुद्र वैज्ञानिकों और भूगर्भ वैज्ञानिकों के बीच सहयोग की ज़रूरत होगी। इन लोगों ने समुद्रों व समुद्र तटों, ज्वालामुखीय विस्फोट और दीर्घावधि जलवायु परिवर्तन के मॉडल्स तैयार किए हैं। दूसरी ओर मानव वैज्ञानिकों और पुराजीव वैज्ञानिकों के बीच सहयोग भी ज़रूरी होगा जिन्होंने धरती पर वनस्पतियों व जंतुओं के वितरण और इन्सानों के जीवाश्मों का संकलन किया है। इस काम में जीन वैज्ञानिकों की भी ज़रूरत होगी जो इस बात का अध्ययन कर सकते हैं कि उपलब्ध डीएनए में किस तरह की विविधता है और जिनेटिक इतिहास का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

सार रूप में, अकादमियों का विचार है कि वे अंतर्राष्ट्रीय जलवायु और मानव विकास के अध्ययन के लिए एक नवीन वैज्ञानिक कार्यक्रम शुरू करेंगी। इस कार्यक्रम के तहत एक ओर तो नए जीवाश्म स्थलों का पता लगाने के लिए व्यापक खोजबीन की जाएगी तथा दूसरी ओर उन इलाकों की झीलों और समुद्रों के पेंदों में गहरी ड्रिलिंग की जाएगी जहां वनमानुष अथवा मनुष्य रहा करते थे। इससे प्राप्त जानकारी काफी सटीक होनी चाहिए ताकि हम काफी छोटी-छोटी अवधि की जलवायु के बारे में कुछ कह सकें। इसके अलावा जलवायु मॉडलिंग के प्रयोग भी किए जाएंगे ताकि वे प्रमुख अवधियां व इलाके पहचाने जा सकें जो मानव विकास को समझने की दृष्टि से निर्णायक हैं।

ऐसे विशाल अंतर्राष्ट्रीय प्रयास से यह समझना संभव हो जाना चाहिए कि वनमानुष से मानव के विकास के वैकासिक परिवर्तन क्या हैं और वे कैसे हुए थे।

इसके अलावा, डीएनए सीक्वेंसिंग की सशक्त तकनीकों की बदौलत हम अफ्रीका के सारे हिस्सों के मानवों और अन्य स्तनधारियों के डीएनए की तुलना पिछले 2 लाख सालों में हुए जलवायु परिवर्तनों से कर सकेंगे। जनसंख्या जिनेटिक्स के मापदंडों की मदद से इस अवधि में जनसंख्या के आकार का अनुमान लगाना भी संभव होगा।

इस सबके लिए एक अंतर्राष्ट्रीय सहयोगी परियोजना की ज़रूरत होगी। इसमें कई देशों की भागीदारी भी ज़रूरी होगी और वित्त व्यवस्था सरकारी व निजी दोनों स्रोतों से करनी होगी। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि आम लोगों की दिलचस्पी इस कार्य में होगी क्योंकि अपना इतिहास हमें सदा से रोमांचित करता रहा है।

भारत में पुरातत्व, पुराजीव विज्ञान, जिनेटिक्स और समुद्र विज्ञान में अनुसंधान की अच्छी परंपरा रही है। हमें इस अंतर्राष्ट्रीय कार्यक्रम में अपनी प्रतिभा व वित्त के साथ ज़रूर जुड़ना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***